कोपेनहेगन के बाद
विजय प्रताप

आज से सौ बरस पहले लिखे गये हिंद स्वराज में पश्चिम से उधार लिये गये लोकतंत्र की सीमा का बयान जिस तल्खी से किया गया है, वह कोपेनहेगन में चल रही वार्त्ताओं को देखकर काफी उचित जान पड़ता है। पूरी दुनिया की सरकारों के आठ हजार से ज्यादा प्रतिनिधि जिस प्रकार से 'वार्ता' में लगे हैं, वह छद्‌म रस्साकशी जैसा लगता है। 15 दिसम्बर को प्रथम खुले सत्र की कारवाई देखने के बाद मैं डेन–हॉस्टल के लिए निकल रहा था कि सीताराम यचुरी से मुलाकात हो गई। मैंने उनसे जनसत्ता के पाठकों के लिए अपनी राय बताने का आग्रह किया। उन्होंने सी.पी.एम की राय जिसका वाम मोर्चे के अन्य दलों ने समर्थन किया है के बारे में जानकारी दी। उनकी बात के चार मुख्य बिंदु हैं। सबसे मुख्य बात है कि विकसित देश ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन की बाध्यकारी सीमा को निर्धारित करें, दूसरे शब्दों में क्योटो प्रोटोकॉल तथा यू.एन.एफ.सी.सी के फैसलों के आलोक में ही आगे का रास्ता तय हो तथा दूसरा, विकसित देशों को क्लीन टैक्नोलौजी प्रक्रियाओं को बौद्धिक सम्पदा कानूनों से मुक्त करना चाहिये। तीसरा, विकसित देश दीर्घकालिक ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करने और समाज को उसका मुकाबला करने में सक्षम बनाने के लिए कार्य योजनाओं के लिए स्पष्ट, समयबद्ध और सुनिश्चित मात्रा में धन उपलब्ध करवाने की प्रतिबद्धता घोषित करनी चाहिये। चौथ, यह तीनों शर्तें पूरी होने पर विकासशील देश भी ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन पर स्वैच्छिक पाबंदी लागू करेंगे और समय–समय पर अपने द्वारा उठाये गये कदमों की सूचना अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी को देंगे।

सीताराम यचुरी ने साफ किया कि भारत को अन्तर्राष्ट्रीय बिरादरी को सूचना देनी है। रपट देने और सूचना में बुनियादी फर्क है। हमारी सरकार ने यदि रपट देने की बात किसी भी सूरत में मान ली तो हमारी उत्पादन प्रक्रियाओं और विकास की तमाम गतिविधियों में विकसित राष्ट्रों का सीधा हस्तक्षेप हो जायेगा।

मोटे तौर पर सीताराम चयुरी की राय एक प्रकार से संसद में पक्ष और विपक्ष की सर्वानुमति की राय भी है। यह राय बनाये भी भारत को काफी अरसा हो गया। बाली वार्ता में गतिरोध आने पर श्री कपिल सिब्बल ने अंतिम समय में डूबती नौका को सहारा देकर 'बाली एक्शन प्लान' के इर्द–गिर्द अन्तर्राष्ट्रीय सहमति बनाने में खासी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

अब ऐसा क्या हो गया है कि कोपेनहेगन में क्योटो प्रोटोकॉल एंव बाली एक्शन प्लान में अंगीकार किये गये निर्णयों को नकारा जा रहा है। जलवायु का संकट पहले से गहराया है और सरकारों का,

खासकर विकसित देशों की सरकारों का रवैया ज्यादा चलताऊ और गैर–जिम्मेवारी पूर्ण हो गया है। विकसित राष्ट्रों की बहुसंख्यक जनता जलवायु संकट के दुष्परिणामों को कबसे भुगत रही है। विकासशील देशों में मोटे तौर पर परिस्थिति चुनौतीपूर्ण होने के बावजूद विकसित देश पीछे लौट रहे हैं। इस पहेली को समझने के लिए कोपेनहेगन के मुख्य वार्ता केन्द्र 'बेला सैंटर' बहुराष्ट्रीय निगमों द्वारा आयोजित कार्यक्रमों तथा ब्राजील, दक्षिण अफ्रीका, भारत तथा चीन के साझे समूह 'बेसिक', जी–77 तथा चीन, अफ्रीकी राष्ट्र समूहों द्वारा मीडिया को दी गई जानकारियों का बारीकी से विश्लेषण जरूरी है। यह 19 दिसम्बर के बाद ही ज्यादा व्यवस्थित ढंग से संभव हो पायेगा।

किसी भी तफसील के विश्लेषण से पहले कुछ बुनियादी बातों के बारे में स्पष्टता होनी चाहिये। अन्तर्राष्ट्रीय नीति या विदेश नीति एवं देश–नीति एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। उदाहरण के लिए कोप–15 वार्ता के विमर्श में सभी देशों की सरकारें 'ग्रीन गैस उत्सर्जन' के मुख्य दोषी एक अरब 'अपराधियों' के बारे में सगुण चर्चा नहीं कर रहे हैं। कारण साफ है– महाद्वीप कोई भी हो, देश विकसित हो या विकासशील – 'ग्रीन गैस उत्सर्जन' अपराध में दुनिया के सभी शासक वर्ग के लोग शामिल हैं। कोपेनहेगन में जुटे सरकारी वार्ताकारों के अतिरिक्त मीडिया कर्मी तथा संस्थाओं के लोग भी शासन वर्ग के ही अंग–उपाँग हैं। हमारे रोजगार बने रहना, घूमना, खाना–कमाना, आराम और मनोरंजन, यात्राऐं और तीर्थाटन अर्थात जीवन चर्या के सभी काम उर्जा के भरपूर किन्तु साथ ही आमतौर से अनावश्यक उपभोग पर आधारित हैं। जलवायु संकट के वास्तविक खतरे से निपटने के लिए हमें अपने रोजगार एवं जीवन जीने के तौर–तरीकों को बारीकी से जांचना होगा। और ऐसी नीतियाँ बनानी होंगी जिनसे ऊर्जा की सघन खपत एवं अन्याय, विषमता और भुखमरी पैदा करने वाले विकास तथा रोजगार के ढांचे को छोड़ वैकल्पिक विकास के ढ़ाचे और जीवन शैली को अपनाया जा सके।

वैकल्पिक विकास और जीवन शैली आधारित आर्थिक तंत्र की पुर्नरचना सिर्फ राजनैतिक दलों के वश की बात नहीं है। वजह साफ है क्योंकि लोकतंत्र के मौजूदा खेल के नियमों के गुलाम वैकल्पिक विकास के लिए अर्थतंत्र की पुर्नरचना की बात तो दूर मौजूदा ढर्रे को लेकर आये गतिरोध पर कोई ईमानदार बहस नहीं करना चाहते। किसी पार्टी या गठबंधन की सरकार हो, उत्तराखंड हो या झारखंड, उत्तर प्रदेश हो या उडीसा, आँध्र प्रदेश हो या मध्यप्रदेश या फिर पश्चिम बंगाल –देश की बहुसंख्यक जनता चाहे सत्ता और सम्पत्ति के मामले में हाशिये पर ही हो, विकास के मौजूदा ढाँचे पर प्रश्न चिन्ह लगा रही है। देश के अनेक हिस्सों में तमाम समूह शांतिमय ढंग से आम–जन को लम्बे संघर्ष के लिए संजो रहे हैं। लेकिन हमारे संसदीय दलों का नेतृत्व है कि संवाद एवं विमर्श से वैकल्पिक ढाँचे की ओर बढ़ने की बात तो जाने दें– वह तो शांतिमय विरोध

को सिरे से ही खारिज कर देते हैं। या फिर विकास के मौजूदा ढ़र्रे के शांतिमय विरोधियों को भी माओवादी बता कर उनके दमनचक्र का ताना–बाना बुन देते हैं। पिछले दिनों पश्चिमी बंगाल, उडीसा, छत्तीसगढ़ और झारखंड में तो नक्सिताओं से निपटने के लिए युद्ध जैसी तैयारी चल रही है।

ध्यान रहे कि कोपेनहेगन वार्ताओं में हम विकासशील देश इन्ही गरीब लोगों के नाम पर पैसे और प्रोद्योगिकी की माँग कर रहे हैं। यह विडम्बना है या त्रासदी कि दुनिया एक अरब प्रभुवर्ग भाषा, संस्कृति, राष्ट्र और रंगभेद से उपर उठकर अपनी मौज मस्ती में कोई रंग में भंग नहीं चाहता। इस संदर्भ में दुनिया के विकसित एवं विकासशील देशों की विभाजन रेखा भी संगत नहीं रह गयी है। पश्चिमी मॉडल वाला लोकतंत्र हो या क्रांति के नाम पर स्थापित अधिनायकवाद का कोई रुप, सभी अपने राज–काज के तौर–तरीकों, संस्थाओं, ढांचो को बहुतराष्ट्रीय निगमों की कमाई के अनुकूल बनाने के काम में जुटा है।

कोपेनहेगन में हमारे देश की स्थापित विचारधाराओं–गाँधीवाद, एकात्म मानववाद, समाजवाद, मार्क्सवाद, महिलावाद और आम्बेडकरी विचारधाराओं–की थकान भी स्पष्ट थी। इन सभी विचार परम्पराओं से प्रेरणा प्राप्त करने वाले बहुत व्यक्ति कोपेनहेगन पहुंचे थे। परन्तु ऐसा लगता ही नहीं कि इन विचारधाराओं पर आधारित जमातों ने जलवायु संकट के बारे में कोई व्यवस्थित गहन विचार विर्मश किया है। काबिलेगौर बात यह है कि नागरिक समाज में इन सवालों को लेकर काफी हलचल है और विचारधाराओं के घरौंदों में भी आस्थवान भक्तों के बीच ऐसे विवेकसम्पन्न लोग प्रश्न उठा रहे हैं और निजि खोज में कोपेनहेगन तक पहुंचे हैं।

लेकिन अधिकांश इस अन्तर्राष्ट्रीय मेले में अपनी विचारदृष्टि की कोई छाप नहीं छोड पाये। अन्तर्राष्ट्रीय वार्ताओं और उनको प्रभावित करने के कौशल के बारे में भी इन देशज विचारधाराओं ने कोई सामूहिक राय या कार्ययोजना नहीं बनाई है। बात चाहे मौजूदा विकास के ढाँचे में देश के बहुजन को हिस्सा दिलवाने की हो या फिर उसमें आमूल–चूल परिवर्तन कर जलवायु संकट से निपटते हुए एक सुंदर, समतामूलक और बेहतर हरित संसार की रचना का सवाल हो, स्थापित देशज विचारधारायें निस्तेज–निष्प्राण जान पडती हैं।

जीवंत विचारधाराओं में सक्रिय टकराहट, संवाद से जो उर्जा पैदा होती है, उसका भी अभाव भारत के प्रतिनिधियों में देखने को मिला। सीखने–जानने की जिज्ञासा की कमी न होते हुए भी हमें भारतीय के नाते, दक्षिण एशियाई, एशियाई या तीसरी दुनिया के सजग, सक्रिय और जिम्मेवार नागरिक के नाते संवाद और विमर्श का कोई साझा तंत्र खडा करना है या बातचीत का ही ऐसा

सिलसिला जिससे यह तंत्र खडा हो सके–ऐसी कोई मजबूत इच्छा नागरिक समाज के नेताओं में नहीं दिखी। वैसे भारत नागरिक समाज से ऐसे अनेक व्यक्ति पहुंचे थे जो जलवायु संकट के सवाल का फैशन बनने से बहुत पहले–एक दशक से ज्यादा–से इस संकट के सन्दर्भ में नैतिकता के एवं विकास के ढाँचे के सवाल उठा रहे हैं। 'जलवायु परिवर्तन के नैतिक प्रश्नों का भारतीय संजाल' (आइनैक) के श्रीधरन कोपेनहेगन में नागरिक समाज के विमर्श में काफी सक्रिय थे। लेकिन समस्या यह है कि बडे अन्तर्राष्ट्रीय समूह हों या देश की बडी संस्थाओं के नेतागण वह मुश्किल सवालों, विकास और नैतिकता के प्रश्नों की दुविधाओं से दो–चार नहीं होना चाहते, और इसीलिए आइनैक जैसे समूहों से दूरी बनाकर रखते हैं।

स्थापित विचारधाराओं की अनुपस्थिति की भाँति बहुजन समाज–दलित, अल्पसंख्यक, कारीगर जमातें, शहरी गरीब तबके, किसान आदिवासी समाजों के लोग भी अपने संगठनों की पहल पर यहाँ नहीं पहुंच पाये थे। वह भी किसी चर्च सर्मथित दाता एजेंसी या फिर किसी सामान्य किस्म के एन. जी.ओ के माध्यम से यहाँ आये थे। ठीक वर्ल्ड सोशल फोरम की प्रक्रिया से मिलता–जुलता भारत–इंडिया विभाजन भी कोपेनहेगन में भारत के नागरिक समाज में स्पष्ट था। भारत के अगडी जाति और मध्यम वर्ग के समूह भी विरले ही होते हैं, जो अपनी हैसियत के लिए इंडिया पर निर्भर न हों। 'कोपेनहेगन से आगे' नामक एक समूह है, जो अपने आप में चालीस से ज्यादा संस्थाओं, संस्था समूहों एवं जनसंगठनों के साझे मंच के बतौर बना है। इसमें अंग्रेजी दां टाइप, विश्व यायावरी वाले इंडियनों का वर्चस्व नहीं था। इस टीम के नेता शरद जोशी अपने असाधारण आत्मविश्वास और साफगोई के चलते विभिन्न पृष्ठभूमियों वाले भारतीयों की एक बडी टीम के साथ उपस्थित थे। इस टीम के स्टाल पर बेला सैंटर में अक्सर रौनक रहती थी। 'कोपेनहेगन से आगे' समूह ने खेती पर 11 दिसम्बर 2009 को 'खेती, जलवायु संकट और कोप 15 शिखर सम्मेलन' विषय पर जो कार्यक्रम आयोजित किया उसमें हॉल पूरा भरा था एवं भाषणों का स्तर काफी ऊँचा था। 'कोपेनहेगन से आगे' नामक यह समूह अपनी उपस्थिति तो जरूर दर्ज करवा पाया किन्तु भारतीयों या दक्षिण एशियाई नागरिक समाज की कोई साझी बैठक या तीसरी दुनिया की साझी समझ बनाने की दिशा में कुछ खास नहीं कर पाया।

11 दिसम्बर 2009 को कोपेनहेगन में भारत के पर्यावरण मंत्री श्री जयराम रमेश ने शाम 7:00 बजें पहली बार मीडिया एवं एन.जी.ओ समूहों को सम्बोधित किया। इस सम्बोधन के शुरु होने के पहले ही 'कोपेनहेगन से आगे' समूह के एक कार्यकर्त्ता ने भारत के विभिन्न आंदोलन समूहों के जलवायु संकट पर बयानों का संकलन मंत्री महोदय को दिया। हालाँकि भारत सरकार ने आंदोलन समूहों

तथा एन.जी.ओ समूहों के माध्यम से सामान्यजन के बीच जलवायु संकट की बहसों को ले जाने की कोई प्रक्रिया शुरू नहीं की है।

कोपेनहेगन का नतीजा तो साफ ही है। इस वार्ता श्रृंखला के बाद भारतीय नागरिक समाज को लोकतंत्र की कसौटियों और परिभाषाओं की कड़ी जांच करनी होगी। उम्मीद है इस विमर्श से मौजूदा लोकतंत्र में बहुराष्ट्रीय निगमों के मुताबिक समाज और राज को ढालने की प्रक्रिया पर कुछ विराम लगेगा और देश तथा दुनिया स्वराज की पगडंडी पर आगे बढ़ेगी।